International Journal of Creative Research Thoughts
Volume 1, Issue.1, January 2013 ISSN:-2320-2882

ORIGINAL ARTICLE

श्री अरविन्द के दर्शन में राष्ट्रवाद

डॉ. मनोज कुमार शर्मा
मधुमेह रोग विशेषज्ञ
अतिथि शिक्षक अ.बि.बा.हि.वि.वि.मध्य
प्रदेश भोज मुक्त वि.वि.परिसर ,भोपाल

शोध आलेख–सार

प्रस्तुत शोध आलेख में दार्शनिक श्री अरविन्द के स्वातंन्त्र्य आन्दोलन में योगदान की गवे णात्मक मीमांसा की गयी है। श्री अरविन्द समकालिक भारतीय अद्वैत चिंतन के न केवल महान हस्ताक्षर हैं, बल्कि भारतीय स्वतन्त्रता की पटकथा का यह अमर लेखक, स्वातन्त्र्य आन्दोलन का यह महानायक एक साथ कुशल राजनीतिज्ञ, क्रान्तिकारी विचारक और सच्चा योगी भी था। श्री अरविन्द के मन में रा ट्रवादी भावना का पल्लवन उनके अध्ययन काल में ही विदेशी भूमि पर हो चुका था। उनका स्वदेश के प्रति सहज समर्पण का प्रमाण ब्रितानी भूमि पर संचालित 'कमल और कटार' नामक एक ऐसी क्रान्तिकारी संस्था के सक्रिय सदस्य होने से स्वयं सिद्ध हो जाता है, जो प्रवासी भारतीय युवकों में मातृभूमि की स्वतन्त्रता का भाव भरती थी। विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से श्री अरविन्द ने अपने रा ट्रवादी विचारों को जनता तक पहुँचाया। इंदुप्रकाश, वंदेमातरम्, कर्मयोगी एवं धर्म आदि पत्र–पत्रिकाओं को माध्यम बनाकर श्री अरविन्द ने देश की राजनीति को सामान्य धरातल से उठाकर आध्यात्मिक धरातल पर प्रति ठत कर दिया।

श्री अरविन्द अपने लेखों से भारतीय जनता के प्रति ॲगरेजी सरकार के लिखे गये भाषण और षड़यन्त्र का परदाफाश करते थे। आपने देश और काल के अनुरूप सर्वोत्तम नीति के रूप में नि क्रय प्रतिरोध स्वीकार किया था। तथापि उनका स्पष्ट मत था कि समय, परिस्थिति और साधन आदि को देखते हुये नीतियों में हेर–फेर भी करना आवश्यक है। अर्थात् हिंसा का जबाब हिंसा से ही देना चाहिये। यदि सरकार हमारा सिर तोड़ती है तो हमें सरकार के सिर तोड़ देना चाहिये। रा ट्रवाद मनु य के सामाजिक और राजनीतिक अभ्युत्थान के

लिये आवश्यक है। स्वतन्त्रता प्रत्येक नागरिक का जन्मसिद्ध अधिकार है। किसी राष्ट्र को यह अधिकार नहीं है कि वह दूसरे राष्ट्रों की स्वतन्त्रता का हनन करे। श्री अरविन्द के लिये स्वतन्त्रता केवल राजनीतिक लक्ष्य नहीं थी अपितु वह आध्यात्मिक अनिवार्यता थी जिसके बिना मानव जाति महान आध्यात्मिक प्रकाश से वंचित रह जायेगी।

"भारत को पूर्ण स्वराज्य चाहिये। पूर्ण स्वराज्य अपने राष्ट्र के लिये सर्वोपरि आकर्षण है। इस आकर्षण को दबा पाना किसी भी अंग्रेज सरकार के लिये संभव नहीं है। स्वराज्य भारतीय मानस की रग–रग में रचा बसा है और यह पाश्चात्य भोगवाद से सर्वथाजुदा है। पाश्चात्य धारणा से युक्त स्वराज्य भारत को जगा नहीं सकता और न इससे भारत जाग सकता है। प्राचीन भारतीय जीवन को आधुनिक परिस्थितियों में चरितार्थ करने के लिये भारत में पुनः सतयुग की संकल्पना को साकार करने के लिये, भारत को पुनः विश्व के गुरू की भूमिका अदा करने के लिये भारत को पूर्ण स्वराज्य चाहिये। समता रूपी वेदांतिक आदर्श को राजनीति में समाहित कर भारतीय जनता को मौलिक स्वतन्त्रता दिलाने के लिये भी पूर्ण स्वराज्य चाहिये।"

03 मई 1908 के 'वंदेमातरम्' के अंक में श्री अरविन्द ने इस लेख से अंग्रेज सरकार की दिन का चैन और रातों की नींद उड़ा दी थी। इस प्रकार "वन्देमातरम्" निरन्तर भारतीय राष्ट्र को अपने मूल उद्देश्य यानी पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति के लिये जाग्रत बनाने में निरत रहा और श्री अरविन्द इसके माध्यम से भारतीय स्वतन्त्रता की पटकथा लिखते रहे। भारतीय स्वतन्त्रता की पटकथा का यह अमर लेखक, स्वातन्त्र्य आन्दोलन का यह शिखर पुरूष एक साथ कुशल राजनीतिज्ञ, क्रान्तिकारी विचारक और सच्चायोगी था। उनका दर्शन जहॉ एक तरफ पाश्चात्य– जडवाद/भौतिकवाद और पौर्वात्य–अध्यात्मवाद दो विपरीत विचार धाराओं का संधि स्थल है वहीं दूसरी तरफ उनका जीवन वृत्त स्वतन्त्रता प्राप्त्यर्थ समर्पित सपूत की, एक क्रान्तिकारी की अमर गाथा भी है। देश की परतन्त्रता के कारणों की व्याख्या करते हुये इस क्रान्तिकारी दार्शनिक का स्वर मुखरित हो उठता है– "जीवन की वास्तविक पूर्णता जीवन के भौतिक पक्ष को नकार कर नहीं बल्कि उसके आध्यात्मिक उन्नयन के माध्यम से ही संभव है। जीवन में भौतिक पक्ष का नि ोध करने के कारण ही भारत को भौतिक परतन्त्रता अंगीकार

करनी पड़ी। वैयक्तिक जीवन की तरह रा ट्रीय जीवन में भी पूर्णता हेतु उसके भौतिक और आध्यात्मिक उभय पक्षों का समन्वित और सन्तुलित अभ्युदय करना होगा।

श्री अरविन्द के मन में रा ट्रवादी भावना का पल्लवन उनके अध्ययनकाल में ही विदेशी भूमि पर हो चुका था। दासता की बेड़ियों में सिसकती भारतमाता और उसका दुःख दारिद्र्य अरविन्द ने बहुत समीप से अनुभव किया। उनका स्वदेश के प्रति सहज समर्पण का प्रमाण ब्रितानी भूमि पर संचालित 'कमल और कटार' नामक एक ऐसी ऐसी क्रान्तिकारी संस्था के सक्रिय सदस्य होने से स्वयं सिद्ध हो जाता है जो प्रवासी भारतीय युवकों में स्वदेश प्रेम का, मातृभूमि की स्वतन्त्रता का भाव भरती थी।

अरविन्द ने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में अपने बड़ौदा निवास (08 फरवरी 1893) के समय से ही रूचि लेना प्रारंभ कर दिया था। इस बीच विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से अरविन्द ने अपने राष्ट्रवादी विचारों को जनता तक पहुॅचाया। इन्दुप्रकाश, वंदेमातरम्, कर्मयोगी और धर्म आदि पत्रिकाओं को माध्यम बनाकर श्री अरविन्द ने देश की राजनीति को सामान्य धरातल से उठाकर आध्यात्मिक धरातल पर पहुॅचा दिया। 'श्री अरविन्द ने वन्देमातरम् के माध्यम से राष्ट्र में भूचाल पैदा कर दिया, जिसे पढ़ने के लिये जवाहर लाल नेहरू भी इन्तजार करते थे। वन्देमातरम् के दफ्तर में देर रात श्री अरविन्द सम्पादकीय लेख लिख रहे थे। हेमंद्र प्रसाद घो ा ने कहा ''रात अधिक हो चुकी है। आपका स्वास्थ्य भी ठीक नहीं है। आप थोड़ा आराम कर लेते तो अच्छा होता।" श्री अरविन्द ने कहा "स्वयं को कार्य में समर्पित करके परमात्मा का यन्त्र बन जाना ही श्रेयकर है। सभी समस्याओं का यही समाधान है। आप मेरी चिंता करें।" अन्य सहयोगी लेखक श्याम सुन्दर चक्रवर्ती ने कहा "आप अपने उद्देश्य में सफल हैं। आपने अपने ओजस्वी लेखों द्वारा कलकत्ते के उग्र विचार धारा के कार्यकर्ताओं को संगठित करके उन्हें महाराष्ट्र–गुजरात में तिलक द्वारा संगठित नये दल के साथ मिलकर एक शक्तिशाली दल बनाने में महती भूमिका निभायी है।"[1]

श्री अरविन्द अपने लेखों से भारतीय जनता के प्रति अंगरेजी सरकार के लिखे गये भाषण और षड्यन्त्र का परदाफाश करते थे। विजय चटर्जी ने कहा "आप अपने नाम से संपादकीय क्यों नहीं प्रकाशित करते। आज मैं 'स्टेट्स मैन' के सम्पादक से मिला था। वे कह

रहे थे कि श्री अरविन्द के लेख इतने उग्र होते हुये भी कहीं से भी कानूनी शिंकजे में नहीं आते है। इस लेख में राष्ट्र द्रोह की गंध आती है, परन्तु इसे इतनी खूबसूरती से लिखा जाता है कि इस पर कोई कानूनी कारवाई नहीं की जा सकती।" वन्देमातरम् में श्री अरविन्द का धारावाहिक लेख 'डाक्ट्रिन ऑफ पैसिव रेसिस्टेंस' प्रकाशित हुआ था जिसने सम्पूर्ण भारत राष्ट्रीय आन्दोलन को एक नई दिश दी।[2] श्री अरविन्द ने बंगाल के नवयुवकों को जो प्रेरणा दी उससे उनका नाम बंगाल से उभर कर राष्ट्रीय राजनीति के मंच पर आ गया। डॉ0 सीतारमैया ने लिखा है ''श्री अरविन्द के प्रकाश की प्रभा एक बाढ़ की तरह हिमालय से कन्याकुमारी तक अपने आप फैल गयी।[3] श्री अरविन्द ने अपनी प्रखर दिव्य शक्ति के द्वारा भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन को आध्यात्मिक आधार प्रदान किया। उन्होंने देश को एक जीवित, जागृत, मातृसत्ता के रूप में अनुभव किया। राष्ट्रवाद कोई कृत्रिम चीज नहीं है अपितु एक धर्म हे जो ईश्वर के पास से आया है और जिसे लेकर हमें जीवित रहना है। श्री अरविन्द राष्ट्र सत्ता को मातृसत्ता के रूप में प्रतिष्ठित करते हुये बंगाल के नवयुवकों में भवानी मॉ का मन्दिर गढ़ने का प्रयास कर रहे थे। श्री अरविन्द के स्वर में राजनीति की दुर्गा पूजा का दुर्गा स्त्रोत फूट पड़ा– मातः दुर्गे, सिंहवाहिनी सर्वशक्तिदायिनी मातः शिवप्रिये, तुम्हारे ाक्त्यंशजात हम बंगाल के युवकगण तुम्हारे मन्दिर में आसीन प्रार्थना करते हैं, सुन मातः उरबंग देश में प्रकाश हो।[4]

श्री अरविन्द के हृदय में राष्ट्रप्रेम का ज्वार उमड़ता रहता है। राष्ट्र हेतु बड़ी से बड़ी कुर्बानी के लिये यह दार्शनिक क्रान्तिकारी अहर्निश तैयार रहता था। स्वयं श्री अरविन्द ने अपने मनोभावों को व्यक्त करते हुये कहा है– "भगिनी निवेदिता ने मुझसे कहा कि कलकत्ते को मेरी जरूरत है। इसके जबाब में मैंने कहा– "नहीं, मैं परदे के पीछे रहूॅगा। परदे के पीछे रहकर कार्य करूॅगा। मेरा कार्य ऐसे आदमियों का निर्माण करना है जो स्वतन्त्रता के आन्दोलन में अपना सर्वस्व, आत्माहुति कर सकें।[5] श्री अरविन्द स्वतन्त्रता प्राप्त्यर्थ कांग्रेस के एक वर्ग उदार वादियों के कटु आलोचक थे। उदारवादियों की अंग्रेजों के प्रति राजभक्ति थी। उनका विश्वास था कि प्रार्थना, सभा, ज्ञापन, पुनर्स्मरण पत्रों आदि के माध्यम से एक न एक दिन ऐसा आयेगा जब अंग्रेज भारतीयों को शासन में क्रमशः भागीदारी कराते हुये एक न एक दिन

स्वतन्त्रता सौंप देंगे और स्वदेश प्रत्यावर्तन कर जायेंगे। ऐसे लोग अंग्रेजों को महान, देवदूत और भारत का उद्धारक समझ बैठे थे। श्री अरविन्द ने इस उदारवादी नीति का विरोध करते हुये उग्र और क्रान्तिकारी मार्ग का अवलम्बन किया। उनका विचार था कि शत्रु कोई बाहर का नहीं है अपितु वह हमारे अन्दर ही बैठा है और वह है हमारा स्वार्थ, हमारी दुर्बलता और भावुकता। हमारी आंतरिक दुर्बलतायें ही हमारी कमजोरी है। जब तक इन कमजारियों को दूर नहीं किया जायेगा तब तक हम अपने उद्देश्य को जो भारत की स्वाधीनता है, नहीं प्राप्त कर सकते। अतः हमें अपने पुरू ाार्थ को जागृत करना चाहिये तथ दृढ़ता और मजबूती के साथ खड़ा हो जाना चाहिये। समाज के अपने सभी भाइयों को अपने साथ लेकर हमें संघ र्ा करना चाहिये।[6]

श्री अरविन्द ने स्वतन्त्रता प्राप्त्यर्थ नि क्रय प्रतिरोध का मार्ग अख्तियार किया। जिसके अन्तर्गत निम्नलिखित कार्यक्रम प्रस्तावित थे–

1. स्वदेशी का प्रचार और विदेशी माल का बहिष्कार।
2. राष्ट्रीय शिक्षा का प्रसार–इस हेतु राष्ट्रीय शिक्षण संस्थाओं की स्थापना।
3. अदालतों और न्यायालयों का बहिष्कार।
4. सरकार से जनता द्वारा कोई सहयोग न करना।
5. जो लोग सरकार को सहयोग दें उनका सामाजिक बहिष्कार किया जाये।

यद्यपि श्री अरविन्द ने देश और काल के अनुरूप सर्वोत्तम नीति के रूप में निश्क्रिय प्रतिरोध स्वीकार किया था तथापि उनका स्पष्ट मत था कि समय, परिस्थिति और साधन आदि को देखते हुये नीतियों में हेर–फेर भी करना आवश्यक है। यह आवश्यक नहीं है कि नि क्रय प्रतिरोध अहिंसक ही हो। हमें हिंसा का उत्तर हिंसा से देना चाहिये। यदि सरकार सभाओं को भंग करती है। हमारे ऊपर लाठी चार्ज करती है तो हमें भी आत्मरक्षा में उसका मुकाबला करना चाहिये और लाठी का जबाब लाठी से देना चाहिये। सरकार यदि हमारे सिर तोड़ती है तो हमें सरकार के सिर तोड़ने चाहिये।

श्री अरविन्द स्वातन्त्र्य आन्दोलन के न केवल वैचारिक क्रान्ति के अगुआ थे बल्कि उन्होंने स्वयं आन्दोलन में सक्रिय सहभागिता भी की। श्री अरविन्द अपने जन्म दिन के ठीक

दूसरे दिन 16 अगस्त 1907 को अपनी राजद्रोही रचनाओं के प्रकाशन के लिये गिरफ्तार कर लिये गये, परन्तु जमानत से रिहा हो गये। 2 मई 1908 को अलीपुर बमकाण्ड में वे पुनः गिरफ्तार कर लिये गये और एक व ा जेल यातना के बाद 6 मई 1909 को मुक्त हुये। फरवरी 1910 को वे अकस्मात् कलकत्ता छोड़कर चन्द्रनगर के लिये रवाना हो गये और 31 मार्च को वे पाण्डीचेरी चले गये।[7]

श्री अरविन्द की दार्शनिक विचार धारा का प्रभाव उनके स्वातन्त्र्य संघ ा में भी दृ ि टगत होता है। उनकी अद्वैत वेदान्ती विचारधारा उनके द्वारा लिखे गये लेखों में जिनका प्रकाशन 'आर्य' नामक मासिक पत्रिका में 'सामाजिक विकास का मनोविज्ञान' शीर्षक से हुआ था देखने को मिलती है। राजनीतिक वेदान्तवाद का अर्थ उपनि ादों में दिये गये सार्वभौम तथ्यों को केवल प्रकट करना भर नहीं है– अपितु पराधीन रा ट्र के राजनीतिक और सामाजिक जीवन का पुनर्निर्माण भी करना है।' श्री अरविन्द ने भारतीय और युरोपीय ज्ञान एवं चिन्तन के आधार पर मनु य की आंतरिक एकता और विश्व एकता के विचार को ग्रहण किया। वे मानवीय एकता को परम प्राकृतिक योजना का ही अंग मानते थे। राजनीतिक विचारक के रूप में उन्होंने समस्त विश्व के मानव समाज के जैविक सिद्धान्त को स्वीकार किया।[8]

सम्पूर्ण विश्व असीम सत्ता का प्रकाश मात्र है। वह असीम सत्ता विश्व में व्यक्तियों, संस्थाओं और संघों के रूप में अपने को निर्विकार रूप से व्यक्त कर रही है, और निरन्तर आत्मसिद्धि की ओर बढ़ रही है। इतिहास की घटनाओं का निर्धारण आध्यात्मिक शक्ति के द्वारा ही किया जाता है। बंगाल में जो कुछ भी हुआ वह ईश्वरीय इच्छा थी। ईश्वर ही भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का सच्चा नेता है। जो कुछ भी तिलक, गॉधी आदि ने किया वह ईश्वर ने ही कराया। श्री अरविन्द का मत था कि राष्ट्रवाद मानव के सामाजिक और राजनीतिक अभ्युत्थान के लिये आवश्यक है। हमारी राष्ट्रीयता जहॉ आत्मोन्नति का मार्ग प्रशस्त करती है वहीं अन्य राष्ट्रों की सम्प्रभुता का आदर भी करती है। भारतीय राष्ट्रवाद को उदारवादी और आध्यात्मवादी स्वरूप प्रदान करने के लिये उन्होंने इसे हिन्दू धर्म और संस्कृति पर आधारित बतलाया। सभी धर्म समान हैं और परमसत्य की प्राप्ति के साधन हैं। ऐसी स्थिति

में सबको आत्मोन्नति, आत्मस्वातन्त्र्य का अधिकार है। किसी राष्ट्र को यह अधिकार नहीं है, कि वह दूसरे राष्ट्रों की स्वतन्त्रता का हनन करे। परतन्त्र राष्ट्र को ऐसे आक्रान्ता राष्ट्र के समूलोच्छेदन हेतु प्राणपण से प्रयत्न कर स्वातन्त्र्य देवि का वरण करना चाहिये। चूँकि भारत विश्व का आध्यात्मिक गुरू रहा है अतः उसे विश्वकल्याणार्थ अपनी केन्द्रीय भूमिका के निर्वहन हेतु तैयार हो जाना चाहिये। परन्तु यह तभी संभव है जब वह भौतिक दृष्टि से स्वाधीन हो। अतः स्वयं भारत के लिये नहीं, सर्वभूतहितार्थ स्वतन्त्रता भारत की पहली आवश्यकता है। अरविन्द के लिये स्वतन्त्रता केवल राजनीतिक लक्ष्य नहीं थी अपितु वह आध्यात्मिक अनिवार्यता थी जिसके बिना मानव जाति महान आध्यात्मिक प्रकाश से वंचित रह जायेगी। स्वतन्त्र होकर भारत अध्यात्म के इस ज्ञान को सम्पूर्ण विश्व में फैला सकता है। श्री अरविन्द के निम्न भावोद्‌गार न केवल उनकी स्वातन्त्र्य साधना की अभिव्यक्ति है, बल्कि अपनी संस्कृति और सभ्यता की आत्मगौरवानुभूति भी। यही आत्मगौरव का भाव तो उसे विशाल ब्रिटानी शासन से लड़ने की शक्ति प्रदान करेगा। स्वातन्त्र्य साधना हेतु आत्मगौरव अनिवार्य है। अन्यथा गुलामी की सर्द हवा उसे निस्तेज और निष्प्राण कर देगी। इसी भावना का प्रसार तो अरविन्द अपने क्रान्तिकारी लेखों के माध्यम से करते थे और सुप्त भारतीयों में सिंह का पराक्रम भर देना चाहते थे– "युगों का भारत मृत नहीं हुआ है और न उसने अपना अन्तिम सृजनात्मक शब्द ही उच्चारित किया है। वह जीवित है और उसे अभी भी स्वयं अपने लिये और मानवता के लिये बहुत कुछ करना है। आज भी उसके पास वही पुरातन अविस्मरणीय शक्ति है, जो अपने गहनतम स्वत्व को पुनः प्राप्त करने में सक्षम है। प्रकाश और शक्ति के परम स्त्रोत को अपने धर्म के सम्पूर्ण और व्यापक स्वरूप को खोजने के लिये वह उन्मुख हो रहा है। भारत राष्ट्रों का गुरू है, मानव आत्मा का, उसके अधिक गंभीर रोगों में चिकित्सक का, उसके भाग्य में एक बार फिर विश्व के जीवन को नये सॉचे में ढालने का महती कार्य लिखा है।[9]

सन्दर्भ सूची

1- अखंण्ड ज्योति, मासिक पत्रिका अगस्त 2011
पृष्ठ 28 प्रकाशक अखंण्ड ज्योति संस्थान घीयामंडी मथुरा।
2- वही। पृष्ठ 28

शर्मा, जितेन्द्र कुमार, समकालिक अद्वैत चिन्तन पृष्ठ 201 संस्करण 2003 प्रकाशक बी. एस. शर्मा एण्ड ब्रदर्स आगरा।

3- मैत्रा एस0 के0, अरविन्द दर्शन की भूमिका अनुवादक सिंह अंजनी कुमार पृष्ठ 07 विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी (उ0प्र0)

4- अखंण्ड ज्योति, मासिक पत्रिका अगस्त 2011
पृष्ठ 28 प्रकाशक अखंण्ड ज्योति संस्थान घीयामंडी मथुरा।

5- शर्मा गोविन्द प्रसाद– भारतीय राजनीतिक चिंतन पृ ठ 99, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल (म0प्र0) संस्करण 1990।

6- अखण्ड ज्योति मासिक पत्रिका अगस्त 2011 पृष्ठ 29 अखण्ड ज्योति संस्थान घीयामण्डी मथुरा।

7- शर्मा गोविन्द प्रसाद – भारतीय राजनीतिक चिंतन पृष्ठ 101 म0प्र0 हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल संस्करण 1990।

8- अखण्ड ज्योति मासिक पत्रिका अगस्त 2011 पृष्ठ 29 अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी मथुरा।